राष्ट्रीय सहारा, नई दिल्ली, मंगलवार, 23 जून 2009

क्या खाद्य सुरक्षा से मिटेगी गरीबी रेखा

विवेचन

मोहन सिंह

सरकारी योजनाओं के कारण गरीबी रेखा के नीचे जीवन बिताने वाला जब तक उस रेखा से ऊपर आने को होता है तो दूसरे लोग अन्यान्य कारणों से गरीबी के गर्त में चले जाते हैं। विगत बीस वर्षों के सरकारी आंकड़े बताते हैं कि हमारी पूरी आबादी के अनुपात में गरीबों की संख्या लगातार जस की तस है

अपनी सरकार के आगामी पांच वर्ष के प्रमुख एजेण्डे में मनमोहन सरकार ने खाद्य सुरक्षा की गारंटी को महत्वपूर्ण ढंग से उछाला है। सरकार खाद्य सुरक्षा कानून बनाने पर विचार कर रही है जिससे सभी को खाद्य सुरक्षा मिलने की गारंटी रहेगी। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों का गरीबी रेखा के नीचे रहने वाला परिवार तीन रुपये प्रति किलो की दर से प्रतिमाह पचीस किलो चावल अथवा गेहूं प्राप्त करने का कानूनी हकदार होगा। घोषणा अपने आप में क्रांतिकारी और भारत के गरीब को राहत देने वाली है परंतु इस घोषणा का कार्यान्वयन कठिन कार्य है। दरअसल गरीबी की रेखा परिभाषित करना और भारत जैसे देश में उनकी संख्या सुनिश्चित करना शुरू से कठिन कार्य रहा है। दहेज प्रथा, आम लोगों में फैलने वाली घातक बीमारियां, प्रशिक्षा, बेरोजगारी अनेक कारण हैं जिससे आदमी गरीब होता रहता है। सरकारी योजनाओं के कारण गरीबी रेखा के नीचे जीवन बिताने वाला जब तक उस रेखा से ऊपर आने को होता है तो दूसरे लोग अन्यान्य कारणों से गरीबी के गर्त में चले जाते हैं। विगत बीस वर्षों के सरकारी आंकड़े बताते हैं कि हमारी पूरी आबादी के अनुपात में गरीबों की संख्या लगातार जस की तस है।

विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारत की बहुत बड़ी आबादी गरीबी को अपनी नियति मान उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर देती है।

विश्व बैंक ने उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल और असम के तीन सौ गांवों के हजारों लोगों से वार्ता के बाद जो निष्कर्ष निकाला है वह भारत सरकार के सरकारी आकलन से भिन्न निष्कर्ष देता है। उस रिपोर्ट में सरकार के गरीबी रेखा के आधार को चुनौती दी गई है और कहा गया है उतनी कमाई में जिंदा रहना असंभव है। 1995 से 2005 के बीच भारत के पिछड़े राज्यों में गरीबों की संख्या में 11 से डेढ़ प्रतिशत की कमी बताई गई थी। लेकिन जब विश्व बैंक ने सर्वेक्षण किया तो पिछड़े राज्यों में गरीबों का प्रतिशत दावे के मुकाबले बहुत ज्यादा था। असम में सबसे ज्यादा 71.5 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश में 66.7 प्रतिशत था। इस अध्ययन की मुख्य कर्ता-धर्ता दीपा नारायण ने यह अध्ययन 'नरेगा' के पहले किया था मुमकिन है नरेगा के बाद गरीबों की संख्या में कुछ कमी आई हो। फिर भी नरेगा की पूरी अवधारणा जिस तरह भ्रष्टाचार की बलि वेदी पर शहीद हुई है, नेता, अफसर बिचौलियों ने मिलकर देश से गरीबी उन्मूलन की इस महत्वाकांक्षी योजना का जिस तरह उपहास किया है उसे देखते हुए गरीबों की संख्या में बहुत कमी की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

जिस बंगाल में 32 वर्षों से वामपंथियों का अखंड राज था, वहां गरीबों का प्रतिशत कुल आबादी में 63.3 प्रतिशत और जिस आंध्र प्रदेश की सूचना प्रौद्योगिकी ने संपूर्ण विश्व में नाम कमाया वहां गरीबी का प्रतिशत 63.8 प्रतिशत है। हालांकि भूमि सुधार कानून बनाकर वामपंथी सरकार ने गरीबों को भूमि स्वामी बनाने की बड़ी कोशिशें की और आंध्र प्रदेश तो स्वयं सहायता समूहों से अग्रणी राज्य है। फिर भी, इन दोनों राज्यों का गरीब दिहाड़ी से अपना जीवन यापन करने की हालत में गुणवत्ता युक्त जीवन उसके लिए उपलब्ध होना कठिन है। इसलिए साधारण गरीब को सस्ता खाद्यान्न उपलब्ध कराने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी सत्ता की है।

किंतु इस नीति का कार्यान्वयन भ्रष्ट अफसरशाही के कारण कठिन काम है। वितरण प्रणाली को चुस्त-दुरुस्त बनाए बिना आनन-फानन में ऐसी घटनाएं भ्रष्टाचार की जड़ को और गहरा करती है। सरकारी योजना आयोग को आशंका है कि इस योजना के कार्यान्वयन के लिए 50 हजार करोड़ से अधिक राज सहायता की जरूरत होगी और इतनी बड़ी धनराशि केवल बंदरबांट के लिए होगी। तीन रुपए किलो के हिसाब से राशन पाना कानूनी हक बनते ही मुकदमों की बाढ़ आ जाएगी और सार्वजनिक वितरण के अधिकारी अदालतों का चक्कर लगाने में अपना समय नष्ट करते रहेंगे। देश में लगभग 33 करोड़ ऐसी आबादी है जिसे इस योजना का लाभ मिलने की संभावना है किंतु कानूनी अधिकार बनने के बाद 33 करोड़ की संख्या में भारी वृद्धि भी होगी। अकेले नरेगा की योजना पर 37 हजार करोड़ खर्च हो रहा है। इस वर्ष इस खर्च के 50 हजार करोड़ के पार जाना है। इसी के साथ सस्ता राशन देने पर इतनी ही राशि इस मद में भी जानी है। करीब एक लाख करोड़ की राज सहायता अंततः सकल घरेलू उत्पाद के राजकोषीय घाटे में और वृद्धि करने वाली है। इसलिए नए वित्तमंत्री के लिए जो बार-बार राजकोषीय घाटा कम करने के पैरोकार हैं उन्हें बजट तैयार करने में मुश्किल आएगी। गरीबी के आंकड़ों के प्रश्न पर कभी राज्य और केंद्र सरकार एक मत नहीं होती। प्रदेश सरकार के पास वितरण की व्यवस्था है और भारत सरकार बीपीएल परिवारों को 4.15 रुपए प्रति किलो की दर से गेहूं और 5.65 रुपए प्रति किलो की दर से चावल उपलब्ध करा रही है। भारत सरकार का दबाव है कि देश में 6.52 करोड़ परिवार बीपीएल की सीमा में हैं। राज्य सरकारों को इसी सीमा में रहकर सस्ते अनाज देना बाध्यकारी है। राज्य सरकार के दावे को स्वीकार किया जाए तो 10 करोड़ परिवार की

सीमा है। उन्होंने इस सीमा को मानकर बीपीएल कार्ड तैयार किए हैं। जमीनी स्तर पर इन कार्डो की संख्या में वृद्धि के लिए आंदोलन होते रहते हैं लेकिन कोई भी राज्य सरकार इस संख्या को न बढ़ाने के लिए विवश है। कृषि मंत्रालय मानता है कि ऐसे लोगों को कार्ड जारी किए गए हैं जो इसके पात्र भी नहीं है। सच्चाई है कि बिचौलिए गांव प्रधान व राशन के दुकानदार राशन की लूट करने के लिए इस संख्या वृद्धि का दबाव बनाते रहते हैं। कानून बनने के बाद बीपीएल से भी नीचे अंत्योदय परिवारों की गणना होती है। लगभग 2.5 करोड़ परिवार इस योजना से लाभान्वित हो रहे हैं। तकरीबन 10 करोड़ आबादी को इस योजना के तहत दो रुपए किलो की दर से 35 किलो गेहूं और तीन रुपए किलो के हिसाब से 35 किलो चावल उपलब्ध कराया जा रहा है। इस तरह अन्तोदय और बीपीएल परिवारों की आबादी जोड़ दी जाए तो भारत की आधी आबादी के आसपास ये आंकड़े हैं।

ऐसे समय में जब किसानों की समस्याओं से रूबरू सरकार ने धान का खरीद मूल्य नौ सौ कुंतल और गेहूं का खरीद मूल्य 1080 रुपए किया था। खरीद मूल्य और ढुलाई रख-रखाव को लेकर चावल की सरकारी कीमत 1200 रुपए व गेहूं की कीमत 1400 रुपए का आसपास आती है। क्या भारतीय अर्थव्यवस्था इतनी सक्षम हो गई है कि गरीबी उन्मूलन के बहाने खाद्यान्न वितरण पर एक हजार प्रति कुंतल के आसपास औसतन राज सहायता को बोझ बर्दाश्त कर सके और इसी के साथ किसानों की खेती में लागत राज सहायता खास कर खाद, उर्वरक, कीटनाशक, कृषि उपकरणों पर कुल मिलाकर एक लाख तीस हजार करोड़ की राज सहायता दी जाती है।